Indian J. Soc. & Pol. 10 (01) : 107-108: 2023 **ISSN : 2348-0084 (PRINT)**
First Published Online 31 JANUARY 2023 **ISSN: 2455-2127 (ONLINE)**

मानवाधिकार संबंधी चुनौतियाँ

स्वदेश कुमार[1]

[1]असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विभाग–राजनीति शास्त्र, आगरा कॉलेज, आगरा, उ0प्र0,भारत

ABSTRACT

भारत में मानवाधिकारों की जो स्थिति है उससे बद्तर संभवतः किसी भी अन्य प्रजातांत्रिक देश में विद्यमान नहीं है। भारतीय संविधान में प्रद्धत मौलिक अधिकारों का जितना परिहास उड़ाया जा रहा है। वह अल्पनातीत है। आज जल, जंगल, जमीन के अधिकारों के संरक्षण की बात तो छोड़ ही दीजिए। जीवित रहने के नैसर्गिक मानवाधिकार तक का कोई ठिकाना इस देश में नहीं रहा। पिछले कुछ वर्षों में भारत में मानवाधिकार के क्षेत्र में व्यापकता आयी है। जहां वंचित समाज अपने अधिकारों को लेकर जागरूक होने हेतु प्रयत्नशील है वहीं सत्ताधारी वर्ग कायम रख सके। स्वाधीनता से लेकर अब तक लगातार शोषण रहित समाज की दिशा में प्रयत्नशील होने की दुहाई तो सभी राजनीतिक दल दे रहे हैं। परंतु वास्तविकता ठीक इसके उलट है। आज विकास, धर्म, आंचलिकता व जातीयता जैसे मसलों की आड़ में समाज के उसके अधिकारों से वंचित करने का षड्यंत्र अपने पूरे जोर पर है।

KEYWORDS : *मानवाधिकार, राजनीति, प्राकृतिक अधिकार*

आज स्थिति यहाँ तक पहुंच गई है कि अपने किसी भी अधिकार को पाने के लिए संघर्ष के अलावा कोई रास्ता ही शेष नही रहा। संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को जीने का अधिकार प्रदान किया गया है परंतु आज समाज के कमजोर वर्ग को अनाज प्राप्त करने तक के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। संघर्ष के बाबजूद उसे आधा अधूरा खाद्यान्न ही प्राप्त हो रहा है।

पंचायती राज अधिनियम के अंतर्गत पंचायतों के अधिकार सुस्पष्ट हैं। आदिवासी क्षेत्रों की पंचायतों को तो अतिरिक्त अधिकार भी प्राप्त है। परंतु विकास की स्थिति संबंधी किसी भी योजना में राय नहीं ली जाती है। गांव व जंगल उजाड़ दिये गयें। जब कुछ जागरूक कार्यकर्ताओं के सहयोग से व अपने अधिकार की आवाज उठाते है तो उन्हें विकास विरोधी कहा जाता है एवं उनके साथ खड़े रहने वालों को विदेशी एजेण्ट।

सांप्रदायिकता की आड़ में पुलिस प्रशासन सब कुछ करने को स्वतंत्र है। पिछले बीस वर्षो में साम्प्रदायिकता का उफान दर असल मानवाधिकारों की अवहेलना, उपेक्षा और तिरस्कार का सह उत्पाद ही है। किसी व्यक्ति के साथ उसके धर्म जाति, या संप्रदाय को लेकर किये जा रहे भेदभाव से समाज में न के असुरक्षा फैल रही है बल्कि पहचान का संकट भी खड़ा हो रहा है। किसी समुदाय के साथ धार्मिक आधार पर किये जा रहे भेदभाव को मानवाधिकारों के हनन के अलावा और क्या कहा जाएगा? साम्प्रदायिकता की आड़ में जिस तरह मानवाधिकारों की अवहेलना की जा रही है वह भी आज की एक महत्वपूर्ण सच्चाई है।

शिक्षा, स्वास्थ्य, खाद्यान्न जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के प्रति भारतीय राजनीतिक तंत्र की उदासीनता स्थितियों को विस्फोटक बना रही है। सरकार के आंकड़ों को ही सच मानकर चलें तो उनके अनुसार देश की 80 प्रतिशत आबादी 20रू प्रतिदिन से कम पर अपना गुजारा कर रही है। वहीं राजनीतिक तंत्र निजीकरण की वकालत पर पूरी बेशर्मी से उतर आया है। आजादी के बाद के पाँच दशकों में भारत ने जो तरक्की की उसमें शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान था। परन्तु उसके बाद जिस तरक निजीकरण को प्रोत्साहित किया गया उससे समाज का एक बड़ा वर्ग शिक्षा सुविधाओं से वंचित होता जा रहा है। ऐसा ही स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी है। अब तो सरकारी अस्पतालों को भी निजी क्षेत्र में सौंपे जाने की बात चल रही है। पिछले वर्षो मे पूरे भारत में प्रति व्यक्ति खाद्यान्न की खपत में भी जबरदस्त कमी आयी है। यह इस क्षेत्र में सरकार की उदासीनता का परिचायक ही है। जिस देश के 50 प्रतिशत बच्चे और महिलाएँ कुपोषित हो वह देश किस प्रकार यह दावा कर सकता है कि वह मानवाधिकारो को संकक्षण प्रदान कर कर रहा है।

पिछले कुछ वर्षों से परिस्थितियां इस हद तक पहुँच गई हैं कि देश का बड़ा हिंसा अलगाववादी और आंतरिक हिंसा का शिकार हो गया है। उत्तर पूर्व से लेकर दक्षिण भारत तक का एक हिस्सा हिंसात्मक प्रतिरोध पर उतर आया है। इन क्षेत्रों मे मानव अधिकारों का बडे पैमाने पर उल्लंघन हो रहा है। हत्या, बलात्कार व आगजनी जैसी घटनाएँ रोजमर्रा की बात हो गई है। दोनों पक्ष एक दूसरे दोषारोपण कर रहे है। वही राजनीतिक नेतृत्व यह तो स्वीकारता है कि इसे मात्र कानून व्यवस्था की समस्या मान कर बलप्रयोग से इसका समाधान नहीं किया जा सकता व इसके लिए राजनीतिक व सामाजिक परिस्थितियों मे परिवर्तन लाना होगा। परन्तु उस दिशा में किसी भी प्रकार का कोई प्रयत्न हमारे सामने आता नहीं दिखता। नक्सलबाड़ी से प्रांरभ हुआ यह संघर्ष आज स्वयं सारे देश में फैलता जा रहा है।

आजादी के बाद से विकास के नाम पर ग्रामीणों और आदिवासियों को बेदखल करने की मुहिम पर प्रभावितों की ओर से थोड़ा बहुत प्रतिकार नर्मदा घाटी, कलिंग नगर, सिंगुर अथवा नंदीग्राम से सामने आने लगा तो सत्ता के तंत्र ने जवाहरलाल नेहरू शहरी

1: Corresponding Author

नवीनीकरण मिशन के माध्यम से शहरों को अपनी चारागाह बनाना प्रारंभ कर दिया। मुंबई स्थित धरावी को गंदीबस्ती के विकास के नाम पर अधिग्रहण कर अकेली एक परियोजना से हजारों करोड़ का वारा न्यारा कर लिया गया है। इसके क्रियांवयन में भी वहां के निवासियों के जीविक व अन्य मानवाधिकारों की भयावह अवहेलना हुयी है।

दिसंबर का प्रथम सप्ताह दो वीभत्स त्रासदियों के लिए प्रतिवर्ष याद किया जाता है। पहली घटना 2–3 दिसंबर को भोपाल स्थित यूनियन कार्बाइड से रिसी जहरीली गैस हजारों की मौत और 06 दिसंबर 1992 को बाबरी मस्जिद ढहाने के फलस्वरूप हुए साम्प्रदायिक दंगों के दोरान हजारो बेगुनाहों का कत्ले आम। भोपाल गैस पीड़ित अपने अधिकारों और मुआवजे के लिए पिछले 24 वर्षो से संघर्ष करते हुए तिल–तिलकर मरने को मजबूर है। परंतु कही भी उनकी सुनवायी नहीं हो रही है। वैसा ही कुछ बाबरी मस्जिद के बारे में भी है। किसी भी जांच को अंतिम निष्कर्ष तक न पहुँचने देना पूरे तंत्र की मनोवृत्ति बन चुकी है।

राजनीति के केन्द्र में बैठा एक महत्वपूर्ण तबका मानवाधिकारों को लेकर भ्रम की स्थिति बनाए रखने हुतु पुरजोर प्रयत्नरत है। प्रशासन भी अपने बढ़ते अत्याचार से स्वयं को बचाने के लिए घटनाओं को बढ़ा–चढ़ाकर बताता है और अपने अत्याचारों को विधिसम्मत ठहराता है। पंजाब, मणिपुर, आसाम, जम्मू–काश्मीर, आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, गुजरात, झारखण्ड, और पश्चिम बंगाल में हम राज्य पोषि हिंसा का उसके क्रूरतम स्वरूप में देख चुके हैं और देख भी रहे हैं। अल्प राज्यों में भी छोटे– स्वरूप में यह हिंस विधमान है। फर्जी मुठभेंडों के एवं निर्दोषो की हत्या ज्वलंत उदाहरण है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते प्रभुत्व ओर विकसित राष्ट्रों खास कर अमेरिका का बर्चस्व से भारतीय अस्मिता बुरी तरह आतंकित हो चुकी है। राजनीतिक दलों के अनेक प्रवक्ता आज इन कंपनियों के अधिवक्ता के तौर पर उच्चत्म और उच्च न्यायालयों मे लगातार पैरवी कर रहे हैं। देश में व्यक्ति के व्यावसाय करने पर किसी भी प्रकार की कोई रोक नहीं है। परंतु इसे दूसरे नजरिये से देखने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए किसी विवाद की स्थिति में यदि सत्ताधारी दल का एक महत्वपूर्ण पदाधिकारी अपनी व्यक्तिगत हैसियत से उस बहुराष्ट्रीय या देशी कंपनी की पैरवी न्यायाल इच्छा शक्ति भी उससे पृथक नहीं होगी। इस तरह से यह कारपोरेशन एक तीर से दो निशाने साधते है। पहला न्यायालय में अपनी पैरवी और दूसरा स्वयं की राजनीतिक संरक्षा प्राप्त है।

वास्तव में हम अपने आस–पास देखें तो तकरीबन प्रत्येक राजनीतिक स्तर पर मानवाधिकार हनन का कारण बनता है। मानवाधिकारों की चुनौतियाँ कम होने के बजाए नये रूप में बढ़ते ही जा रही है।

REFERENCES

कपूर, डॉ श्याम किशोर(2005) *'मानवाधिकार,'* द्वितीय संस्करण सी. एल.ए।

जाखड़, दिलीप (2004) *'मानवाधिकार'* प्रथम संस्करण, जयपुर, यूनिवर्सिटी बुक हाउस (प्रा.) लि.,

त्रिपाटी, डॉ.टी.पी. (2004) *'मानवाधिकार'* द्वितीय संस्करण, इलाहाबाद, लॉ एलेंसी पब्लिकेशन

रिजवी, सैययदफरजन्द अली (1999) *'मानव अधिकार :' कल और आज* प्रथम संस्करण, दिल्ली

अग्रवाल, डॉ. लोकेश, *'राजनीति विज्ञान के मूल सिद्वांत'* म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी।

नीति मार्ग, पाक्षिक पत्रिका, 30 नवम्बर 2008, पेज 11, भोपाल